KALYUG का KURUKSHETRA

तिलक नाथ पोद्दार

ISBN No. 978-93-343-2364-1

First Edition 2025

Published by : Tilak Nath Poddar

Kota Raipur Chhattisgarh

Pin 492010

Tilakn693@gmail.com

Distributed by : Tilak Nath Poddar

Printed by : Kanak Product Raipur

Price : Rs. 165

भूमिका

मनुष्य का इतिहास केवल विजयों और पराजयों का लेखा–जोखा नहीं है, बल्कि उसके भीतर चलने वाले उन संघर्षों की कथा भी है, जो समय के साथ केवल स्थान और रूप बदलते रहे हैं। महाभारत का युद्ध कुरुक्षेत्र में लड़ा गया था, लेकिन उस युद्ध की आंच आज भी हमारी

आत्मा, समाज और मूल्य–व्यवस्था में सुलग रही है। इतिहास केवल घटनाओं की श्रृंखला नहीं होता, वह मानवता की चेतना, संघर्ष और आत्ममंथन की निरंतर यात्रा का दर्पण होता है। ”कलयुग का कुरुक्षेत्र“ इसी चेतना यात्रा की एक पड़ाव है जहाँ भूतकाल की स्मृतियाँ, वर्तमान की चुनौतियाँ और भविष्य की संभावनाएँ एक ही मंच पर एकत्र होती हैं, ठीक वैसे ही

जैसे महाभारत में कौरवों और पांडवों की सेनाएँ कुरुक्षेत्र में आमने–सामने खड़ी थीं।

यह पुस्तक "कलयुग का कुरुक्षेत्र" एक प्रतीक है उस संघर्ष का, जो आज हर व्यक्ति अपने भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर लड़ रहा है। सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय, धर्म और अधर्म के बीच की रेखाएँ धुंधली हो चुकी हैं। यह कलयुग का यथार्थ है, जहाँ दुर्योधन अब

किसी एक व्यक्ति का नाम नहीं, बल्कि एक सोच बन चुका है और अर्जुन संशय में डूबा हुआ है, क्योंकि अब कोई कृष्ण स्पष्ट स्वर में गीता नहीं सुना रहा।

आज का युग, जिसे हम 'कलयुग' कहते हैं, अपने भीतर एक नया कुरुक्षेत्र संजोए हुए है। यह युद्ध अब केवल बाह्य नहीं रहा, यह हमारे अंतर्मन, हमारे समाज, हमारी राजनीति, हमारे विचार

और हमारी नैतिकता के भीतर लड़ा जा रहा है। यह युद्ध अब तलवारों से नहीं, शब्दों, विचारों, तकनीक, लोभ, भय, भ्रम और स्वार्थ के अस्त्रों से लड़ा जा रहा है।

इस पुस्तक को लिखते समय मैंने तीन प्रमुख दिशाओं में विचार किया है –

भूतकाल, जहाँ महाभारत जैसी ऐतिहासिक घटनाएँ और महान ग्रंथों की शिक्षाएँ हमारे लिए दर्पण हैं। **वर्तमान,** जहाँ

हर मनुष्य अर्जुन की तरह द्वंद्व में है, और समाज दुर्योधन की जिद और शकुनि की चालों से जूझ रहा है। और **भविष्य,** जो अभी आकार ले रहा है, जहाँ अगर आज हमने अपने कुरुक्षेत्र को समझा नहीं, तो कल कोई कृष्ण हमें मार्ग नहीं दिखा सकेगा।

मैंने समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, और नैतिक मुद्दों को महाभारत की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है।

यह कोई धार्मिक ग्रंथ नहीं है, न ही कोई ऐतिहासिक विश्लेषण, बल्कि यह एक चिंतन है, एक आह्वान है, आत्ममंथन का। यह पुस्तक केवल समाज की आलोचना नहीं करती, न ही केवल दर्शन का पाठ पढ़ाती है। यह एक आम मनुष्य के संघर्ष, उसके प्रश्न, उसकी उलझनों और उसके उत्तरों की खोज है। यह पुस्तक बताती है कि कुरुक्षेत्र हर समय मौजूद

रहता है बस पात्र बदल जाते हैं, युद्ध के औजार बदल जाते हैं, और शायद अब धर्म की व्याख्या भी बदल गई है।

"कलयुग का कुरुक्षेत्र" एक प्रयास है समय के तीनों आयामों को जोड़कर, आत्मा और समाज की गहराइयों में झाँकने का।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में पाठक को स्वयं का कोई रूप,

कोई द्वंद्व, और शायद कोई समाधान भी दिखाई देगा।

यदि यह पुस्तक आपके भीतर सोच की हलचल पैदा करे, यदि यह आपके अपने 'कुरुक्षेत्र' को देखने की दृष्टि दे सके, तो यह मेरा सौभाग्य होगा। यदि इस प्रयास से किसी भी पाठक के भीतर कुछ क्षणों के लिए भी विचारों का संघर्ष उत्पन्न होता है, तो मैं अपने उद्देश्य में सफल समझूँगा।

रायपुर, छ.ग. –

तिलक नाथ पोद्दार

(लेखक)

प्रथम सर्ग

क्या कुरुक्षेत्र शांत हुई,
क्या धर्म परचम लहराया है?

या फिर सत्ता के खेलों में,
सत्य ने मुँह छुपाया है?

हाथ में शस्त्र लिए जो थे,
अब मौन साधते खड़े हुए,

धर्म युद्ध के नाम पर,
छल की चालें जड़े हुए।

वीरगाथा के स्वप्न सभी,
अब धूल धूसरित होते हैं,
सत्य, अहिंसा, न्याय सब,
सत्ता के पांव तले रोते हैं।

तो कहाँ गया वो रण,
जो वर्तमान कलयुग कहलाता
है?

क्यों नहीं दिखता अर्जुन,
न गांडीव चलाता है?

कभी पाञ्चजन्य बजता था,
क्या मीडिया की शोर ने उसे दबा दिया?

कुरुक्षेत्र की गाथा को,
क्या कलयुग ने अब भुला दिया?

क्या कोई एकलव्य बन,
अब द्रोण का मान बढ़ाएगा?

या कलयुग के कालचक्र में,
गुरु को मुर्दाबाद कहकर
चिल्लायेगा।

क्या कोई दीपक,
तम में जल उठेगा?

धर्म की रह पर,
कोई अर्जुन गांडीव ले उठेगा?

क्या लिंक मांगने वाला,
अब चीरहरण रुकवाएगा?

सत्य की तलवार उठाकर,
अन्याय पर न्याय दिलवाएगा?

क्या न्यायलय में खड़ा व्यक्ति,
वचन बद्ध रहेगा?

भीष्म प्रतिज्ञा जानकर,
धर्म युक्त रहेगा?

हाँ द्वापर अब खत्म हुआ,
नहीं पांच ग्राम की लड़ाई है।
पर क्या अब भाई—भाई में,
नहीं धन संचय की लड़ाई है?

कहाँ कोई अब कर्ण बचा,
जो निस्वार्थ दान चुकाए?
कलयुग के दानवीर है,
पहले कैमरे तो कोई सजाए।

स्वार्थ की इस भीड़ में,
सब दिखावे का मेला है,
दान भी मंच सजा कर,
अब लाइक्स का खेला है।

मित्रता भी हो गई अब,
स्वार्थ की सौदागर भाषा,

हर छलिया शकुनी सा है,
हर कौरव की अलग परिभाषा।

पांडव तो भीतर सो रहें,
बाहर दुर्योधन जागे हैं,
धर्म सभा में धर्म लुप्त,
अब लोभ के नारे लागे हैं।

क्या गीता की गूंज कहीं,
अब भी अंतर में बची हुई?

या इस भीड़ के नारों में,
बस खोई हुई सी, मरी हुई?

अब कलम को ही गांडीव मानी मैंने,
विचारों की बाण सजाई है,
धर्म की सच्ची राह पे,
शब्दों की मशाल जलाई है।

हर पंक्ति मेरी प्रतिज्ञा है,
हर शब्द मेरा प्रण है,
धर्म की इस रणभूमि में,
मेरा कलम ही अर्जुन है।

भीड़ के शोर में खो न जाऊँ,
सत्य का दीपक थामूंगा,

धूल धूसरित सपनों को,
जीवन फिर से दूंगा मैं।

सत्ता की साजिश में भी,
न्याय का दीप जलाना है,
हाँ इस कलयुग के कुरुक्षेत्र में, मुझे अर्जुन बन दिखलाना है।

हर द्वार बंद है अब,
मन के भीतर युद्ध मचा,

अंधेरों की इस भीड़ में,
आशा का दीप जलता सा।

वचन की जो कसमें टूटीं,
उन्हें फिर से पिरोऊँगा,
हर मौन को शब्द दूँगा,
धर्म की आहट बन जाऊँगा।

जहाँ स्वार्थ ने ओढ़े वस्त्र,
और पाखंड है सजा हुआ,
मैं वहाँ दीपक बनकर,
हर छलावे को मिटाऊँगा।

मन का कुरुक्षेत्र जगेगा,
सत्य का रथ बढ़ाऊँगा,
हर अर्जुन के भीतर छुपे,
संशय को भी हराऊँगा।

न्याय की तलवार धार दूँगा,
अन्याय के हर तीर काटूँगा,
विवेक की मशाल लेकर,
नफरत के अंधेरे छाटूँगा।

जो भीष्म प्रतिज्ञा टूटी थी,
फिर नयी शपथ दिलवाऊँगा,

हर शब्द से धर्म साधना,
हर पंक्ति में दीप जलाऊँगा।

क्योंकि मैं जानता हूँ ये रण,
बाहर नहीं, भीतर पनपता है,
हर मन के कुरुक्षेत्र में,
हर पल महाभारत चलता है।

तो क्यों डरूँ मैं हार से,
क्यों झुकूँ मैं सत्ता के आगे,
जब मेरे मन का गांडीव,
सत्य की प्रत्यंचा साधे।

जहाँ स्नेह की राह बंद हो,
करुणा के दीप जलेंगे,
हर न्याय के प्रहरी फिर से,
धर्म युद्ध में साथ चलेंगे।

हर पग में जो संशय आए,
उसे साहस से हराओगे,
हर संकल्प की लौ लेकर,
नूतन प्रभात जगाओगे।

कभी न सोचो कि,
ये रण दृढ़ अकेले ही लड़ा
जाएगा,

हर अर्जुन की उँगली थामे,
कृष्ण भी साथ निभाएगा।

जहाँ भी छल, जहाँ भी पाप,
वहाँ सत्य का शंख बजेगा,
सूर्य भी निश्चित शक्ति देंगे,
जब धर्म का युद्ध चलेगा।

तो हे सूर्य, अर्ग सदा समर्पण,
बल मुझको प्रदान करो,
रणभूमि में जहाँ अधर्म हो,
वहीं मुझे प्रस्थान करो।

सत्ता में दुर्योधन अब है,
सत्य फिर किनारे है,
कान्हा की बंसी मौन पड़ी,
भीष्म खड़े बेचारे हैं।

सभाओं में फिर जुए चल रहे,
चीरहरण की चालें हैं,
धर्मराजों के हाथ बँधे हैं,
राजनीति की जाले हैं।

संजय अब भी देख रहा है,
पर बोल नहीं पाता है,

हर हस्तिनापुर सड़कों पर
अब,
न्याय के लिए चिल्लाता है।

कृपाचार्य मंत्री बने हैं,
नीति विकृत सिखलाई है,
द्रोण बने अब शिक्षक कम,
सत्ता की परछाई हैं।

कर्ण बिके हैं सत्ता में,
दानवीरों का मोल लगा,
धर्म नहीं अब प्रश्न यहाँ,
बस सिंहासन पर युद्ध चला।

युद्ध न अब बस तलवारों का,
ये मीडिया का रण है,
इस युद्ध की विजय ही,
धर्मज्ञ का प्रण है।

नेता शकुनी चाल चलें,
धर्म का हो अपमान यहाँ,
तो अर्जुन को फिर जन्म लेना,
है राष्ट्र का समाधान वहाँ।

हे कृष्ण! सारथी बनो फिर,
नीति–सत्य का दीप जलाओं,

सूदख़ोरी, स्वार्थ, अधर्म,
सबका अब संहार कराओं।

जनता को गीता समझाओ,
युद्ध कभी भी विकल्प नहीं,
पर जब सत्य दम तोड़े,
तब कौन कहें, युद्ध, धर्म नहीं?

हे भारत! तू चुप क्यों है?
फिर रणभूमि सजा दी जाए,
धर्म–कर्म के पथ पर चलकर,
कुरुक्षेत्र रचा दी जाए।

हे सूर्य! मुझे वो दृष्टि दो,
जहाँ अधर्म को जान सकूँ,
सत्ता के इस महाभारत में,
मैं धर्म से पहचान सकूँ।

कर सकूँ मैं क्रांति कोई,
इतना तो बल दोगे न?

चक्रव्यूह भी तोड़ सकूँ,
पूरा मुझको हल दोगे न?

मैं भी जनहित संवाद,
लेकर जाऊँगा,

हे माधव! मुझको भी,
न कोई बांध सकें।
न्याय को इतना बल देना,
न्याय को तो पहचान सकें।

निश्चित कलयुग है,
न्याय पर भी शक जाएगा,
लोभ की बिसात पर,
सत्य भी तो बिक जाएगा।

किंतु अधर्म का बोध है मुझको,
धर्म भी सिखला सकता हु,

संसार की इस भ्रम जाल को,
क्षण में भंग कर सकता हु।

वाणी में विराम नहीं,
प्रतिज्ञा मैने जानी है,
सत्य धर्म के मार्ग पर,
नव निर्माण की ठानी है।

नव निर्माण की मार्ग पर,
कलयुग का छल ही तो बाधा है,
पर क्या छल कर ही,
तुम सकुनी बन पाओगे?

बिन ज्ञान बुद्धि के,
तुम तो क्षण भर न आगे आओगे।

छल नीति से कर रहे बस,
बेबुनियादी प्रलाप,
कायरता को छोड़कर,
युद्ध में भर तेजस्विताप।

मिथ्या के इस मायाजाल में,
क्यों स्वयं को खोते हो?
धर्म यश से दूर रह,
केवल जाल ही बोते हो।

सत्य का उजियारा लेकर,
पथ को आलोकित कर,
कदम बढ़ाओ युद्ध में,
पर धर्म का मान रख कर।

अज्ञान को मन से मुक्त कर,
साहस का दीप जलाओ,
शौर्य की ज्योति से फिर,
तम को दूर भगाओ।

सत्य शपथ ले युद्ध भूमि में,
वीरता का दान दो,

पराजय की चिंता त्याग,
विजय का आह्वान दो।

संधि वार्ता को त्याग कर,
सिंहनाद सुनाओ अब,
भीष्म का आदर्श लेकर,
धर्म विजय दिखाओ सब।

विनाश का संकल्प ले,
करुणा का उद्गार दो,
करुणा और कोप को,
समवेत कर धार दो।

ज्वाल देख कब भपकेगा
तुझमें,
पौरुषता की आग,
रह न अब खड़ा मौन तू,
कर भैरव तांडव का राग।

रख हौसला, सफल होगा तू,
मिटेगा असुर का भाग,
विफल न होगा श्रम तेरा,
बढ़ेगा यश अभिराग।

कायरता को छोड़ कर,
रण भूमि में कर तान,

उठा शस्त्र, शब्द साध,
कर दोषण को निष्कान।

अंधकार का कर हरण,
बढ़ा लो मन का मान,
धर्मपथ पर दृढ़ रहो,
यही तो वीर का दान।

मिथ्या जाल को चीर दे,
उठा जोश का ज्वार,
धर्म–सत्य की ध्वजा लिए,
न हो फिर तेरा हार।

मानवता के दीप से,
मिटा दे सारा अंधियार,
शौर्य दीप जला उठा,
मिटे हर स्वार्थ का भार।

अधर्म विचार का कर नाश,
साध साधु का गान,
शूल बने तेरे वचन,
कर ध्वनि का निर्माण।

धर्म की वाणी साध ले,
रख श्रद्धा का ध्यान,

अडिग रह, रण भूमि में,
वीरों का रख मान।

संग्राम के रैन काल में,
फिर भोर अब छायेगा,
विजय दीप लिए धरा में,
अर्जुन पुनः लौट आयेगा।

होंगे संग केसरी नंदन,
रथ धर्म का न रुक पायेगा,
कृष्ण की लीला होगी फिर,
अब धर्म ध्वजा लहरायेगा।

शौर्य शिखर पर नायक चल,
सिंहासन लहरायेगा,
धर्म विजय के पथ पर जो,
निज तेज बहायेगा।

साक्षी बन धरती गगन,
देखे वीरता की मशाल,
दिगंत व्यापी यश तुम्हारा,
गाएगा हर युग काल।

धर्म ध्वजा के पथ पर जो,
सच्चा वीर कहलायेगा,

रणभेरी के गर्जन में,
हर शत्रु सिहर जायेगा।

कवच किरण सम ओज लिए,
रणभूमि चमकायेगा,
सिंह शावक गर्जन करे,
जब रण संग्राम सजायेगा।

अब अधर्म युक्त कलयुग निरस्त कर,
मै अर्जुन बन जाऊंगा,
दान पुण्य के मामले में,
मैं कर्ण सा कहलाऊँगा।

कायरता से कोई मोह नही,
वृकोधर सा बलशाली हु,
सरल दृष्टि से देखो अगर
तुम,
मैं धर्महित का विचारी हु।

अब अधर्म युक्त कलयुग,
रण संग्राम में जायेगा,
वीर शूर का तेज लिए,
धरती पर उतर आयेगा।

शस्त्र उठा मैं बढ़ चलूँ,
रण का ताप दिखाऊँगा,

सूर्य सा उज्जवल तेज लिए,
मैं शौर्य गान सुनाऊँगा।

अर्जुन की नोक से जो तीर
चले,
वो धर्म संवर जायेगा,
ध्वस्त होंगे अधर्म के किले,
जब संग्राम सजा जायेगा।

वीर भुजाओं का बल देख,
रण भूमि नत हो जायेगा,
कौरवों का दर्प मिटा,
अब धर्म पथ आयेगा।

कृष्ण के हस्त से जो रथ चला,
वो विजय गीत सुनायेगा,
शौर्य गाथा बनकर ये,
युग युग तक गूँज जायेगा।

उज्ज्वल स्वप्न रचूँगा मैं,
आदर्शों की नई कहानी,
युग परिवर्तन की बेला में,
जाग उठी है युवा जवानी।

मन में ज्वाला धधक रही,
क्रांति का संकल्प लिया,

अधरों पर मंत्र जाग उठा,
न्याय का रण रच दिया।

अविचल पथ का पथिक बना,
अविचल संकल्प धरा है,
न्याय धर्म के नव सूर्य का,
अभिनव उदय हुआ है।

मेरे स्वर में प्रलय वाणी,
शब्दों में गर्जन भरी,
चेतना के अमृत पान से,
यह भूमि पुष्पित करी।

रथ के घोड़े तड़प उठे,
युद्ध घोष फिर सुनाया,
धर्म युद्ध की अखंड आभा,
चरणों में मुस्काया।

नयनों में तेज अनल सम,
अधरों पर जयघोष धरे,
शौर्य–सिंह की गाथा में,
रुद्र रागिनी गूंज उठे।

आकांक्षाओं की नाव लिए,
मैं पार समुद्र करूँगा,

धर्मराज के पथिक बनकर,
हर बंधन को तोड़ूँगा।

रुधिर की गंगा बहे धरा,
फिर भी पथ न रुक पाएगा,
कर्मवीर की जयघोष में,
नव युग का स्वप्न आएगा।

कर्मशील का आदर्श ध्वज,
नभ के पार लहराएगा,
सत्यम् शिवम् सुंदरम् का,
संदेश पुनः गाया जाएगा।

कण–कण में शक्ति संचित है,
नयनों में नव ज्योति प्रखर,
अमिट धरोहर संस्कृति की,
युग चेतना का दिव्य स्वर।

अमर वाणी का आह्वान,
निश्चय शक्ति बन जाए,
महाकाल के नाद संग,
वीर स्वर प्रतिध्वनित आए।

सिंह गर्जना सरीखा स्वर,
अमर वाणी बन जाएगा,

शक्ति–स्रोत की ज्योति से,
जग आलोकित हो जाएगा।

नभ में नवदीप्त नक्षत्र,
मेरी विजय का यशगान,
युग चेतना की रचना में,
मैं हूँ क्रांति का प्रमाण।

संग्राम की इस ललकार में,
निःशंक मैं चला जाऊँ,
हर विघ्न बाधा को लांघकर,
नव सृजन गीत गाऊँ।

अधर्म पर धर्म विजय का,
अद्वितीय यह संवाद,
महाकाव्य की गाथा में,
मैं लिखूँ युग का इतिहास।

अमर गाथा का नायक हूँ,
निश्चल धर्मप्राण,
सत्य धर्म की वाणी में,
गूँजे नव प्राणवान।

अन्याय पर वज्र प्रहार कर,
विजय पताका लहराऊँ,

युग युगांतर तक अमर,
यह जय गीत मैं गाऊँ।

क्रांति की इस मशाल से,
अंधियारा हर जाऊँ,
नव आदर्श की रचना में,
युग गान बन जाऊँ।

धर्म नीति के इस यज्ञ में,
आहूति बनकर जलूँगा,
कलयुग की इस वेदना में,
अमर कथाएँ कहूँगा।

धर्म ध्वजा के ऊँचे स्वर में,
युग परिवर्तन लाऊँ,

सत्य शौर्य की वाणी से,
तम का क्षय कर जाऊँ।

अश्वमेध की इस यात्रा में,
मैं दीप समान जलूँगा,
जग में नव चेतना भरकर,
युग नायक बन जन्मूँगा।

नायक ऐसा जिसमें हो,
धर्म का पुरा ज्ञान,

सिखला दें जो पुरे जग को,
शिष्ठा, निति का संज्ञान।

द्वितीय सर्ग

कलयुग का यह कुरुक्षेत्र,
निरंतर चलता जाता है,

युद्ध भूमि में हर कोई किंतु,
युद्ध क्या? समझ न पाता है।

चारों ओर मैने देखा कलयुग
क्या?
यह जाना है,

कही धर्म तो कही अधर्म,
कुरुक्षेत्र मैंने पहचाना है।

तुममें भी यह शक्ति है,
माया को तुम जान सको,

''कलयुग का कुरुक्षेत्र'' क्यों कहता हु?
तुम भी पहचान सको ।

चारों ओर सृजन की होड़ मची,
विनाश निरंतर छाया है,

राम राम की प्रभा भी,
तो अंधकार ने भी जाल बिछाया है।

कभी आराधना नारी की,
अब होता, तिरस्कार यहाँ,
शब्दों में विष घुला हुआ,
संबंधों में व्यापार यहाँ।

यमुना गंदी हो चली,
मन कैसे निर्मल रह जाएगा?

धर्म की आढ़ में जब पाप हो,
तो धर्मज्ञा की सही पहचान
कौन बताएगा?

रील बनाने वाला अब धार्मिक
कहलाएगा,
दान पुण्य के नाम पर
फॉलोअर बढ़ाएगा,
सबला नहीं नचनिया जब
प्रेरणा कहलाएगी,
स्वतंत्रता की आड़ में, अपना
मान लुटाएगी।

सत्य तो सबको दबाना है,
मिथ्या का अब जमाना है,
अश्लीलता को आय बना,
बस न्याय न्याय चिल्लाना है।

अब पहचानती कहां है बल अपना?
वह निर्बलता की मारी है,
न्याय तंत्र में, न्याय उसे,
पुरुषों की लाचारी है।

सौंदर्य बिक रहा है अब,
यूं बाजार की बोली में,

विवेक घुटा हुआ शोर में,
वासनाओं की टोली में।

शिक्षा अब व्यवसाय बनी,
विद्या का व्यापार हुआ,
गुरुकुल के अब वो भाव नहीं,
बस कोचिंग का विस्तार हुआ।

विद्या का अब मूल्य यही कि,
कितनी नौकरी ला पाई,
नैतिकता हो चाहे मृत,
पात्रता में गुणगान समाई।
जिन्हें शस्त्र थामने थे,

अब माइक लिए वो चीख रहे,
सच की खातिर लड़ने वाले,
लड़ना अब तक सिख रहे।

कंधों पर ना संस्कार बचे,
बस डिग्री का भार लिए,
युवक भटकते घूम रहे,
बिन पथ, बिन सार लिए।

वेश बदलता साधु यहाँ,
मोबाइल में प्रवचन बतानी है,

शास्त्रों का तो पता नहीं,

अपितु व्हाट्सएप के ज्ञानी है।

साधु भी मैं क्यों कहूँ?

कहा बची उनमें साधु की परिभाषा है?
उन्हें भी तो है विलास की अभिलाषा।

रील में सब श्रवण बने,
वास्तव में कितना सत्कार है?

इतिहास आज धुतकारेगा,

क्या यही तेरे संस्कार है?

इनमें भी दोषी केवल,
युवा तरुणाई कहलाएगा?

संस्कार न देने वाले परिजन पर,
न कोई उंगली उठाएगा?

आस्था, श्रद्धा का केंद्र,
मंदिर है पावन धाम।

नहीं यह स्थल एडवेंचर का,

न ही घूमने फिरने का नाम।

कलयुग का यह विषम दृश्य,
मंदिरों का हुआ अनादर,
कभी न गए गृह बगल मंदिर के अंदर,
धर्म कर्म के नाम पे घूम रहे हैं सात समंदर।

हर द्वार पर बंदूक का साया,
अंधविश्वास का घटिया व्यापार,

धन के पीछे भागते लोग,
भूल गए पूजा का आधार।

नशे की लहर में डूबा यौवन,
भटका मन का मीत,
गाँजे की धुंध में खोया,
भूला कुल का गीत।

सतयुग का चरित्र उज्ज्वल,
था जीवन संनाद,
कलयुग में युवा भटके,
नष्ट हुआ संवाद।

मारपीट का राग सुनाया,
सदा हिंसा का क्रंदन,
हृदय में अंधियारा छाया,
खो गया वह चंदन।

पहले थी सत्य की राहें,
चलता युग का यात्री,
अब झगड़ों में डूबा मनुज,
बन गया वह पथभ्रष्टि।

कलयुग का ये खेल निराला,
नारी–पुरुष संग्राम,

समानता की बात अधूरी,
टूटा विश्वास का धाम।

मांगे हक, पर देना भूलें,
मन में स्वार्थ का जाम,
सच्ची बराबरी तब होगी,
जब बंटे प्रेम का नाम।

द्वेष की दीवारें ऊँची,
गिरी नहीं सद्भाव,
लोभ लिपटा मनुष्यता से,
जैसे कोई घाव।

चुप्पी अब न्याय के आगे,
बोल रहा है दाव,
पथ भुला बैठा है जीवन,
खोया उसका ठाव।

जिसके पास चमकता सोना,
सुधि उसकी सरकार,
बाकी गिनती में ना आए,
भूले उसके द्वार।

बिन पर्ची, बिन सिफारिश,
बंद वहाँ उपचार,

बीमारों की भीड़ लटकती,
जैसे कोई भार।

चुपचाप झेलो यातनाएँ,
रोग बने बदनामी,
इंसान, नहीं? यहाँ समझते बस,
पर्चा, कुर्सी, नामी।

निचले तल के बिस्तर गंदे,
छत से टपके नीर,
भोजन में भी दवा न घुले,
पीड़ा बने तकदीर।

दफ्तर सा सन्नाटा है,
चप्पल तक की गूंज,
सूनी आँखें राह तकें,
मुँह पे पड़ रहे धूप।

पर्ची बनती देर तलक,
फाइलों की कतार लगी,
बीमारों की साँस भी अब,
दिवारों के न उस पार सुनी।

खिड़की पर एक मूँछ वाला,
पूछे बात घुमा?

‘‘बिस्तर खाली है मगर,
पहले नियम निभा।‘‘

सूई दे या ना दे, नर्सें,
दिखता उनमें क्रोध,
जैसे सेवा बोझ बने,
ना कोई संकोच।

कभी कहे कि ‘‘डॉक्टर मीटिंग
में‘‘,
कभी कि ‘‘नहीं है खोज‘‘,
रुग्ण पड़ा इंतजार करे,
सहता अनगिन चोट।

बाहर एम्बुलेंस खड़ी है,
भीतर मौन मलाल,
संवेदना की लाश गिरी है,
बजता नहीं सवाल।

भूल गए वे डॉक्टर अब,
क्यों पहना था ऑल?
शपथ थी मानव–सेवा की,
बन बैठे दलाल।

भीतर बैठा एक अधेढ़,
साँसों से बेबस,

साथ न कोई, जेब भी खाली,
दिखता है विवश।

कहता कि मैंने टैक्स दिया है,
फिर भी क्यों तिरस्कार?

क्या मैं नहीं मनुष्य जैसा?
है मुझसे क्यों इंकार?"

हर बिस्तर की चादर मैली,
दीवारों पर है दाग,
संवेदनाएं की चीखें दम तोड़ें,

और न्याय व्यवस्था में लगी आग।

बिना बीमा कोई न पूछे,
बिना घूस दिए है दूरी,,
धन की भाषा बोले सिस्टम,
मानवता है अधूरी।

अस्पताल की इमारत ऊँची,
सेवा फिर भी दूरी,
स्वस्थ्य बना है व्यापारिक रथ,
मानवता मजबूरी।
प्रेस्क्रिप्शन पर ब्रांड लिखे,

सौदेबाजी जारी,
दवा वही बिके जो दे,
मुनाफा दस गुना भारी।

जन औषधि की दुकानें सूनी,
छाया व्यापार न्यारी,
संविधान के हक भी डोलें,
कानून बना लाचारी।

जाँच कराओ, स्कैन कराओ,
रोग की नहीं जरूरत,

मशीनों में जकड़ा मानव,

चुप है उसकी हसरत।

कहने को सब हाईटेक हैं,
पर सेवा में विराम,
तकनीक से नहीं निकलता,
पीड़ा का निष्क्राम।

बीमार नहीं बस दस्तावेज हो,
जैसे यह जीवन,
चिकित्सा नहीं लगती,
जैसे चल रहा हो आंदोलन।

अब तक तो तुम समझ ही गए,
व्यथा की यह परिभाषा,
श्वेत कोट की शपथ गिरी है,
बन गई है निराशा।

संघर्ष यहाँ न धर्म के हित,
न है कोई विचार,
बस रोगी और व्यवस्था में,
चलता है व्यर्थ प्रहार।

नैतिकता की छाया धुंधली,
टूट गया विश्वास,

जो जीवन दे वही बना,
अब चुपचाप एक विनाश।

चिकित्सक बना भीष्म सा,
पर पक्ष नहीं बताता?

राजा–सा सेवक बैठा है,
जनता पर शासन चलाता।

द्रोण बने संस्थान जहाँ,
ज्ञान नहीं सिखाता,
और अभिमन्यु–सा फँसता रोगी,

द्वार किसी को न भाता।
धृतराष्ट्र सा तंत्र अंधा है,
सत्ता देखे लाभ,
गुरु बने अब शस्त्रधारी,
पर खो चुके हैं ताप।

धन ने बाँधी आंखें सबकी,
नीति हुई निष्प्राण,
सेवा, समर्पण, करुणा कि,
सब बातें अब बेजान।

कहते हो कुरुक्षेत्र बीता?
प्रश्न वही अब खड़ा,

धर्म कहाँ है, नीति किसकी?
कौन बताए कौन बड़ा?

डिग्रियाँ हैं जैसे शस्त्र,
फिर भी खाली झोली,
प्रतिभा भी बिकती देखो,
चली जहाँ हो बोली।

नौकरी का यज्ञ रचाया,
पर देव न देता ध्यान,
आहुति बनती आशाएँ,
भीतर बुझते प्राण।

मंदिर–सा हर दफ्तर लगता,
लेकिन बंद किवाड़,
प्रवेश वही पा सकता है,
जिसके पास उपहार।

शब्दों के धनुष सजाए,
युवा करे संधान,
लेकिन लक्ष्य लुप्त हो जाए,
जब बिके परीक्षा–विधान।

रोजगार का रथ टूटा है,
कर्मों की पीड़ा भारी,

व्यवस्था हस्तिनापुर सी,
चुप बैठी बनी लाचारी।

माँ–बाप की आँखों में प्रश्न?
रिश्तों में न विनम्रता,
अपने ही भीतर जन्मे तब,
आत्मवंचना की व्यथा।

जो चलना था पथ सृजन का,
वह मुड़ गया संत्रास,
बेरोजगारी का यह कुरुक्षेत्र,
करता जीवन उपहास।

कुरुक्षेत्र न अब केवल धरा पे,
हर खेत हुआ मैदान,
हर बीज से निकलती चीत्कार,
हर फसल बने बलिदान।

जो खेतों में रचता जीवन,
वह खुद जीवन से हारा,
हल से जिसने सृजन किया,
वो ढोए अब दुःख सारा।

कभी था जो धूप का साथी,
अब बदली में उजियारा,

पसीना जो वंदनीय था,
वो बना उपेक्षित धारा।

हल थामे जो चलता था,
अब थामा है हाथ,
धर्मयुद्ध में खड़ा अकेला,
बोझ बने सौगात।

कभी युधिष्ठिर, कभी अर्जुन,
अब बना अनाथ,
धूप–धूल का योद्धा झेले,
सत्ता की विषबात।

न नियमों की नीति रही,
न न्यायों का आधार,
घोषणाएँ हुई हर घड़ी ,
छिनता गया अधिकार।

राजा जो था जन का सेवक,
वो अब करे व्यापार,
धान्य का भी मोल लगे जब,
तब टूटे संसार।

सत्ता के शस्त्र उठे,
कागज बनें शरभंग,

कृषक बना अभिमन्यु अब,
चारों ओर प्रपंच।

बात करूँ मैं बचपन की,
तो वो भी अब रणभूमि है,
न खेल रहा, न पढ़ रहा,
भूख की प्रतिछाया चूमी है।

कलयुग का कैसा विधान ये?

जहाँ भूखा बचपन पाप है,
जो मेहनत से जीना चाहे,
वो अपराधी, अभिशाप है।

चढ़े मंच पर अमीर का बच्चा,
वो तो बस प्रताप है,

कमजोर अगर बोले ‘‘काम करूँ‘‘?
तो हर उत्तर बस ‘‘चुपचाप‘‘ है।

बाल–श्रम कानून बना,
क्या भूख पे उसका प्रभाव है?

वो पूछेः ”खाली पेट लिए,

क्या पाठशाला का ये प्रवाह
है?

फर्क नहीं पड़ता समाज की,
जाति, हालात, और ठाठ से,
माँगता नहीं वो भीख कभी,
बस चाहता जीवन अपने हाथ
से।

पर नीति और व्यवस्था कहती
कि,
मत छीनो उनका बचपन।

पर कौन देगा उस भूखे को?
अगली रोटी का दर्शन?

न हाथ में कलम मिली,
न गोद में कोई गीत,
जो पायी वो थी उदासी,
और पसीने की रीत।

मिट्टी–धूल से बना बचपन,
सपनों से अनजान,
कंधों पर संसार टिका,
पर खुद बेनाम, निर्वाण।

‘पढ़ो, बढ़ो’ कहने वाले,
बस भाषण में उलझे,
कभी जाकर देखें किसी कारखाने में,
उन नन्हे हाथों को लोहे से जलते।

कभी ठेले पे धूप में,
तो कभी ईंट ढोते शाम,
कभी होटल में जूठा माँजें,
तो कभी माँगे दाम।

फिर कोई अफसर कहता है कि,
यह बाल श्रम है निषेध,
तो पूछे अब वो बच्चा भी?
क्या पेट की भूख करे अब वेद?

सपनों की क्या ही बात करे?
जब नींद भी अधूरी है।

सपना हो तो भी कैसे जन्मे?
जब नींव ही टूटी डोरी है।

गुड़ियों के था साथ खेलता,
अब झाड़ू है उठाए खड़ा,
अमीरों के इन मेलों में,
उसका बचपन है मरा।
जो बच्चा अभिनय करे स्क्रीन पे,
वो 'कलाकार' कहलाए,
जो बच्चा पोंछे फर्श यहाँ,
वो 'अपराधी' बन जाए।

भूख से टूटा बालक अब,
समाज से हुआ पराया।

पिए जहर चुप्पी का कब तक?
कब तक जीवन को
झुठलाया?

किसी फुटपाथ की गंध से
निकला,
किसी गली ने छाँव दी,
जहाँ गुरु न थे,
वहाँ 'भाई' ने हथियारों की
राह दी।

जिन हाथों में चाकू चला,
वो पहले थाल माँजते थे,

पर जब भूख ने आह भरी,
वो चुप्पी साधे नाचते थे।

गुंडा नहीं, वो भूखा था,
ये मत भूलो समय के वीरों,
जब दुनिया ने पीठ मोड़ी,
तब खोले शोषण ने द्वार गरीबों।

न नीति मिली, न कोई ढाल,
बस गलियों का न्याय मिला,
चौराहों की कचहरियों में,
जीवन को व्यापार मिला।

कलयुग में फिर कुरुक्षेत्र है,
योद्धा है अब भटके हुए,
ना अर्जुन हैं, ना नीति,
ना कर्म के रथ है जुड़े हुए।

बल मिला है, बुद्धि नहीं,
ये भी तो अधर्म की चाल है,
धर्म को समझाए कोई,
भूख भी तो महाभारत का
काल है।

अब चरस, अफीम, और
गोलियाँ,

वो ही नए मंत्र बने,

बचपन की रेत में पल–पल,
तिल–तिल कर सपने जले।

जो कल तक पूछता था?
कब स्कूल चलें?

अब पूछता वो है,
सैटिंग में कौन कौन है?

माफिया उसकी किताबें हैं,
और गली पाठशाला बनी,

जहाँ परीक्षा गोली से होती है,
और उत्तर में जंजीरें सनी।
अब बोतल में ढलता बचपन,
धुएँ में खोया स्वप्न,
गिनता था वो जीने के दिन,
अब गिनता है बस जख्म।

नशे की राख में जलती,
कुछ यादें, कुछ वचन,
और समाज पूछे क्यों बना
ऐसा?
जैसे खुद थे अजनबी जन।

सिगरेट की लकीरों में अब,
माँ की हँसी खो गई,
एक बार जो थामा था उँगली,
वो उँगली भी अब सो गई।

अब कोकीन से ढकते हैं दर्द,
शराब से करते है संवाद,
कभी जो चाहता था किताब,
अब ढूँढता है बस स्वाद।

अंदर में एक जंग छिड़ी है,
वो है खुद से लड़ रहा,
कलयुग का ये कुरुक्षेत्र अब,

आत्मा में है गड़ रहा।

एक ओर पाप की पुकार,
एक ओर मां की याद,
पर नशा कहे सब झूठ है,
और भीतर फूटे फसाद।

ये हार नहीं, उदासी है,
ये प्रश्न नहीं, चीत्कार है,
जिसे तुम गुंडा कहते हो,
वो बस टूटा परिवार है।

कभी रात में चुपके से वो,

छत पर देखें चाँद।

पूछे है खुद से यह अब भी?
क्या देता कोई मुझे पहचान?

जवाब में आती है गूँज,
तू ही तो था जो चला गया,
और खुद में ही सिसकता है,
कि क्यों किसी ने बुलाया न?"

जब नशा नायक बन जाए,
खलनायक की पहचान कहा?

समानता सा ज्ञान है सब में,
पर दिव्यांत सी तेज कहा?
जो वीर थे, जो धीर थे,
उनका गौरव कहाँ गया?

जो देश के लिए जिया,
वो बलिदान का रंग कहाँ गया?

क्या केवल सुख की चाह में,
अब सब कुछ बिसराया?

या फिर नवजागरण का सूरज,

भारत में फिर उग आया?

यदि न दिखे कुरुक्षेत्र अब भी,
निश्चित तुम गांधारी हो।

देख सकते थे सब किंतु
आंखों में,
अंधियार के धारी हो।

कैसे धर्म का पाढ़ पढ़ाऊं?
तुम तो अधर्म के पुजारी हो।

क्यों नहीं दिखता कुरुक्षेत्र ?

क्या समाज में शांति छाई है?

क्यों दुर्बलता की चालों में?
नायक की परछाई है?

धर्म की रक्षा कौन करेगा?
कर्तव्य का पालन कौन करेगा?

अधर्म का नाश कौन करेगा?
न्याय की स्थापना कौन करेगा?

वीरों की गाथा फिर गाई जाए,
दुर्जनों का संहार हो,

सत्य की विजय पताका लहराए,
न्याय का व्यवहार हो।

तृतीय सर्ग

कलयुग के इस कुरुक्षेत्र में,
अब नेता ही दुर्योधन हैं,
पर हर धनुष के पीछे छिपे,
सौ–सौ छल के गुण हैं।

नेता अब रथी नहीं,
ना ही नीति के ज्ञानी,
अब वे कुर्सी के व्यापारी हैं,
और हम सब सिर्फ कहानी।

कभी जाति की ढाल उठाते,
कभी धर्म का तूफान,
कोई दलित के गले लग
जाता,
कोई गाये सैनिक का गान।

छात्र नेता कहे, क्रांति लाएँगे,
और फिर लड़ा चुनाव,
युवा नेता ने फेंकी टोपी,
और माँग ली 'लाल बत्ती' की
नाव।

वरिष्ठ बोले कि देश बदलें,
पर बदल गए सिर्फ दल,
जनता सोचती रह गई कि,
कहाँ गया मेरा पल?

वोट से पहले चरण स्पर्श,
बाद में भूलते सबके नाम,
नेताओं की मुस्कानें भी,
करे अब काम तमाम।

गरीब की बस्ती को दिखा,
विकास का भ्रमजाल,

बाद में खोद देते वही जमीन,
बिछा कर निजी जाल।

घोषणाओं की बरसात होए,
चुनाव के सावन में,
बाकी दिन बस सूखा छा
जाए,
जनता होवे रोवन में।

कभी "हर घर जल" कह कर
आए,
कभी "हर खेत को दाना",

पर तस्वीरें छपते ही,
गायब हो गया वो अफसाना।
कुर्सी को ही धर्म बना लें,
ये कैसी है संसदीय रीत?
सत्य की राह भूले सबने,
बिकी हुई है हर एक प्रीत।

न्याय नहीं अब मिलता न्यायालय में,
बस मिलती तारीखें है,
और संसद के गलियारों में गूंजें,
जुमलों की चीखें है।

पक्ष–विपक्ष का खेल अब केवल,
मंचन है कोई धर्म नहीं,
हर संसद–युद्ध में हारती बस,
जनता है फिर इनको शर्म नहीं।

कलयुग का ये कुरुक्षेत्र,
ना तीर–धनुष, ना अश्वों का रण,
बस चमकते कैमरों में लड़ा जाता,
है सच्चाई का मरण।

न्यायालय में सच की हत्या,
बहसों के भाले से,
वकील नहीं, व्यापारी लगते,
कुर्ते के उजाले से।

धारा बदलती जैसे मौसम,
गवाही बनती प्रपंच,
झूठ, अब सीधा सत्ताधीश का,
वैध घोषणा मंच।

मीडिया की आँखें बिक चुकीं,
गाते ये राग रंगीन,

हर चीख तोड़ते ऐसे,
जैसे हो कोई अपराधीन।

'ब्रेकिंग न्यूज' में जलती आशा,
'डिबेट' में बंटती भीड़,
जहाँ एक ही दल के पालतू
कुत्ते,
काटते हर उम्मीद।

शिक्षा भी अब व्यापार बनी,
विद्या की लगी बोली,
जो पैसे वाला, वो विद्वान,
जो निर्धन, उसकी झोली।

गुरु की जगह अब कोचिंग सेंटर,
पुस्तकें अब है उत्पाद,
कक्षा में नहीं संवाद बचा,
बस रैंकिंग की है बात।

छात्र नेता भी गजब के हैं,
उनको ही शिक्षा का ज्ञान नहीं,
नैतिकता की ढाल लिए,
नैतिकता की पहचान नहीं।

आंदोलन एक पथ बना,
गुरुजन का अपमान यहाँ,
डिग्रियाँ बस दीवारों की शोभा,
नहीं कोई ज्ञान वहाँ।

जिन्हें बनना था दीपक कभी,
अब वो धुआँ बनते हैं,
कक्षा की जगह सड़कों पर,
मुद्दे झूठे गिनते हैं।

''हक'' की भाषा में,
''हठ'' की लड़ियाँ पिरोते हैं,

गुरु की आँखें नम होती,
जब शिष्य भीड़ में खोते हैं।

कभी नारा ''रोजगार चाहिए'',
कभी ''सत्ता का भाग'',
बैरों की भाषा सीख ली जब,
भूल गए थे संवाद।

विश्वविद्यालय बना अखाड़ा,
ज्ञान बना अब व्यापार,
जो किताब में खोजे उत्तर,
वो कहलाए लाचार।

युवा अब विद्रोह की मशाल
लिए,
पर पथ का ही ज्ञान नहीं,
सिर्फ जला रहा है जंगल,
पर रोपण का अभिमान नहीं।

जिस क्रांति की बातें करता है,
उसका कोई इतिहास नहीं,
बस जोश से भरकर चलता है,
होश का उसके पास नहीं।

भीड़ उसे वीर बनाती है,

अकेले में वो मौन है,
भ्रम में उसे लगता तलवार यह,
कि असली धर्म का कौन है।

पर शस्त्र वही पवित्र बने,
जिनमें हो नीति की धार,
यह अर्जुन भूल गया है अब,
बस लड़ना उसका व्यवहार।

जिस सोच से चीर सके अंधकार,
वो बुद्धि अब खो गई।

सत्य–असत्य के बीच की रेखा,
अब बिल्कुल धो गई।

शिष्य कभी था चरणों में झुकता,
अब आँख मिलाकर चिल्लाता है।

सवाल नहीं, सिर्फ उत्तर माँगे?
तो गुरु से लड़ जाता है।

पुस्तकें अब भार हैं केवल,

चिंतन का कोई मूल नहीं,
ज्ञान का दीपक बुझ चुका,
और शिक्षा की कोई धूल नहीं।

गुरु बना है मंच का दर्शक,
पाठशाला का एक गवाह,
वो बोले सत्य तो, विद्रोह हो,
चुप रहे तो भी, चाह व्यर्थ राह।

कभी जिसने अर्जुन गढ़े थे,
अब वो ही स्वयं अपमानित हैं,

कलयुग के इस कुरुक्षेत्र में,
गुरु भी अब विस्थापित हैं।

संस्कारों की शून्यता में,
चेतना अब जागती नहीं,
विवेक जलाया क्रोध ने,
पर आत्मा कुछ कहती नहीं।

युवा अब भीड़ का हिस्सा,
ना सोच का एक नाम,
जिसे चाहा था दीप बनना,
वो अब बन गया ज्वालधाम।

कर्म की जगह जल्दबाजी,
और परिणाम की हड़बड़ी,

हर कोई बनना चाहे राजा,
चाहे हो नीति की चढ़ाई कड़ी।

मर्यादा की डोर टूटी है,
रिश्तों का रंग फीका है।

कलयुग के इस कुरुक्षेत्र में,
हर मन अब अधूरा दिखा है।

सड़क पे गाड़ी तेज हो,
या वाणी का हो तूफान,
युवा को रुकना अब भाता नही,
धैर्य की टूटी पहचान।
जिन हाथों में पुस्तकें थीं,
अब उनमें पत्थर हैं,
जो कभी प्रेम का बीज थे,
आज वो विद्रोही अक्षर हैं।

अब प्रश्न उठे, क्या फिर आएगा?
कोई गीता का ज्ञानी?

क्या फिर चलेगा धर्मरथ?
या रह जाएगी बस कहानी?

क्या कृष्ण फिर फुसफुसाएँगे?
युद्ध करो अधर्म से,

या हार मान बैठा रहेगा युग,
चुपचाप इस भ्रम से?

संविधान है, पर न्याय नहीं,
ये कैसा कुरुक्षेत्र है?

हर अर्जुन मौन खड़ा है,
अब गांडीव ही शेष है।

जिस युग में गुरु की उपेक्षा हो,
क्या शिष्य ज्ञानी बन पाएगा?

जिस भूमि पर सत्यम शिवम् नहीं,
क्या वहाँ मंगल ठहर पाएगा?

पर संभव है, जगे विवेक,
कोई दीपक फूटेगा,

कोई बालक फिर एक दिन,
राम–कृष्ण सा छूटेगा।

.

ना हो भेष तपस्वी जैसा,
ना हो भाषण भारी,
पर मन में हो न्याय की ज्वाला,
आँखों में हो चिंगारी।

संवेदना से उठे विचार,
करुणा हो जिसका रथ,
ऐसा कोई बालक उठे,

जो तोड़े पाखंड की गठ।

वो न किसी जाति से बोले,
न धर्म से परिचय दे,

बस मानवता का दीप लिए,
वह सत्य–संग्राम में बढ़े चले।

न संसद की कुर्सी मांगे,
न सत्ता का संधान,
केवल चेतनता से ही भर दे,
सोई हुई पहचान।

वो बोले ना प्रश्न बनूंगा,
ना भीड़ का एक नाम,
बस जहाँ भी अन्याय दिखे,
वहीं करूंगा संग्राम।"

कभी खेत में किसान बना,
कभी बना मजदूर,
जहाँ–जहाँ शोषण फैला,
वहाँ हुआ मशहूर।

नेता चौंके, राजा डोले,
संतों की शांति डोली,
बोल उठा जब वो निर्धन,

जिसने जीवन की भूखें तोली।

ना पथ उसके आसान रहे,
ना फूलों से सत्कार,

पर सत्य की भाषा बोल–बोल,
बन गया वह प्रहार।

गुरुजनों ने पूछा उससे,
कौन तुझे अधिकार दिया?
उसने उत्तर में मुस्काकर,
मुझे विवेक ने पुकार दिया।

ना ग्रंथों का भार लिया,
ना माला, ना कोई मंत्र,
बस करुणा थी, और न्याय–दीप,
यही बना उसका तंत्र।

अब और नहीं यह मौन सहेंगे,
अब और चुप हम नही रहेंगे,
धर्म नहीं है केवल पूजा,
अब हम उसकी राह चुनेंगे।

हर झूठे वचन से टकराएंगे,
हर छल को ध्वस्त करेंगे,

कलयुग के इस कुरुक्षेत्र में,
हर सत्य हेतु यज्ञ भरेंगे।

ना हाथ में तलवार चाहिए,
ना ढाल, ना कोई शस्त्र,
बस चेतन मन, ज्वलंत हृदय,
यही होगा अब अस्त्र।

वो रथ चलेगा विचारों से,
जिसकी लगाम विवेक,
और धर्मराज की सेना में,
हम सब होंगे एक।

कभी शिक्षक बन शिक्षा देंगे,
कभी किसान बनेंगे,
जहाँ जहाँ अंधकार मिलेगा,
वहाँ प्रकाश करेंगे।

ना दल का झंडा उठाएँगे,
ना मंचों का अभिमान।

केवल मानवता का ध्वज लिए,
चलेंगे धर्म से शान।

तो यदि कोई पूछे तुमसे,
कुरुक्षेत्र अब कहाँ है?

तो कहना हर गली, हर द्वार,
हर मनुष्य जहाँ है।

और यदि कोई पूछे,
पांडव अब हैं या गए?

तो कहना हर न्यायप्रिय हृदय
में,
वे आज भी जिए।

कुरुक्षेत्र अब रण नहीं केवल,
ये आत्मचेत की पुकार है,

अधर्म पे उठी हर उँगली,
अब धर्म की तलवार है।

ना युद्ध बाहरी होगा अब,
ना रणभूमि कोई और,
हृदय के भीतर जो द्वंद है,
वहीं हमारा छोर।

कभी हक के लिए खड़े होंगे,
कभी सत्य का झंडा लेंगे,
जहाँ—जहाँ मौन की हत्या होगी,

वहाँ शब्दों से युद्ध छेड़ेंगे।

ना अपमान सहेंगे नारी का,
ना शिक्षा का अवमूल्यन,
हर पीड़ा पर हम बनेंगे,
अग्निपथ का उद्घोषण।

हमें न मूर्ति बनना है,
ना नेता की जयकार,
हमें बनना है दीप वो,
जो जले हर बार।

क्योंकि धर्म है करुणा से जीना,
और अन्याय से लड़ जाना,
धर्म है भूखे को रोटी देना,
ना सिर्फ उपदेश बतलाना।

चतुर्थ सर्ग

अब अंत नहीं ये प्रारंभ है,
जगने का एक स्वर।

कलयुग का ये कुरुक्षेत्र है,
हम उसके वीर प्रहर।

ना कोई बाहर से आएगा,
ना कोई कृष्ण पुकारेगा।

हर आत्मा को अब खुद,
धर्म युद्ध सँभालेगा।

गुरु द्रोण बन जाएँ तो,
नीति उन्हें बदलनी होगी,
शिक्षा बने शस्त्र, विवेक का,
हर पीड़ा भी सहनी होगी।

जो ज्ञान दे वो निष्पक्ष हो,
ना स्वार्थ से वो डोले,
वरना शिक्षा का दीप नहीं,
बस अंधकार ही बोले।

डॉक्टर को न पैसा भाए,
ना रुतबा, ना प्रसंग,
सेवा बने उसकी पूजा,

हर रोगी बने उसका रंग।

न रुग्ण देखे जेब का भार,
न दवा में करे व्यापार,
कलयुग में वैद्य वही सच्चा,
जो बनाए उपचार को प्यार।

नेता यदि धर्मराज न हो,
तो देश अधर्म में डूबेगा,

हर झूठा भाषण फिर बस,
एक और छल बन बनेगा।

वो जो पथ दिखाए प्रकाश का,
उसी को चुनो पथिक,
वरना लोकतंत्र बन जाएगा,
एक माया का व्यतिक।

युवा को अर्जुन बनना होगा,
पर गांडीव को साथ रखे,
नशा, मोह, आलस्य का,
हर बंधन वो काट चले।

धर्म न हो सिर्फ प्रवचन में,
वह आचरण में हो,
कर्मयोगी वही कहलाए,

जो धर्म के रक्षक हो।

माता–पिता भी भूल न जाएँ,
संस्कारों की बात,
वरना घर की नींव से ही,
गिर जाएगा समाज का साथ।

संस्कार हो शस्त्र बनें,
सच्चाई बनें कवच,

तो बालक न गुंडा बने,
हर सपनें बनें सच।

हर व्यक्ति को खुद से पूछना होगा,
मैं किसका वंशधर हूँ?

अगर युग धर्म है युद्ध करना,
तो क्या मैं योग्य अर्जुन हूँ?

कभी नीति बनो युधिष्ठिर सी,
कभी भीम की शक्ति रखो,

हर युद्ध हो सत्य का,
बस ये ही समर्पण रखो।

कुरुक्षेत्र अब कहीं नहीं,
हर हृदय में जलता है,
जो मौन है, जो भटक गया,
वो भी भीतर में लड़ता है।

अब मत देखो किसी कृष्ण
को,
जो रथ हाँके फिर से,
तुम्हीं बनो सारथी अपने,
इस कलयुगी सत्य के दर्पण
में।

अब धर्म अधर्म की रेखाएँ,

स्पष्ट हो चुकी हैं,
हर दिल एक रणभूमि है,
तलवारें तो रुकी हैं।

निर्णय, संकल्प, विवेक का,
अब हथियार तुम्हें थामना है,
हर चुप्पी हार बनेगी अब,
युद्ध का आमना—सामना है।

यदि शिक्षक बने तो ज्ञान दो,
ना सत्ताओं की घूस,
यदि न्यायाधीश हो तो निष्पक्ष
बनो,

ना बंद आँखों की जूस।

यदि अफसर हो तो,
जनता का सेवक बन जाओ,
और अगर नागरिक हो तो,
हर अन्याय पे सवाल उठाओ।

ना भीड़ से डरना है,
ना तानों की चोट से झुकना
है,

अगर पथ अकेला भी हो,

फिर भी न्याय के संग ही
चलना है।

क्योंकि कलयुग का कुरुक्षेत्र,
अब कोई मैदान नहीं,
यह तो हर दिन का जीवन है,
यही अब युद्धभूमि सही।

तो उठो, विचारों से सज्ज हो,
मत पूछो कौन तुम्हारे साथ?
हर बार धर्म की जीत तभी,
जब हर मानव बने उस पाँत।
ना किसी अर्जुन की प्रतीक्षा,

ना कोई रथवान चाहिए,
अब इस कलयुग के कुरुक्षेत्र में,
बस एक जागा इंसान चाहिए।

न जरूरत किसी चक्र की,
न कोई शंख बजाना है,
अब सच को ही सहारा देना,
यही धर्म निभाना है।

धर्म कोई ग्रंथ नहीं,
ना ही केवल ये आस्था,

धर्म वो पथ है,
जहाँ मानवता ही हो व्याख्या।

कुरुक्षेत्र हर गली बना है,
युद्ध नीति के वियुक्त,
जहाँ नीति तो मूक पड़ी है,
अधर्म खड़ा है युक्त।

यदि तुम युवा हो तो लक्ष्य
भरो,
ना भटकाव की राह लो,
संस्कारों से सींचो मन अपना,
ना केवल दिखावे को सहो।

यदि तुम शिक्षक हो तो शिष्य को
केवल पाठ ना पढ़ाओ,
जीवन के मूल सिखाओ,
उसको भी दिप बनाओ।

यदि तुम चिकित्सक हो तो,
केवल फीस मत देखो,
हर धड़कन के पीछे छिपा एक जीवन,
वो ही बस समझो।

यदि तुम शासक हो तो,
जनता की पीड़ा को गिनो,
वरना कुर्सी की लकड़ी से,
श्मशान की चिता बनो।

यदि तुम मीडिया हो तो,
सच का ही दीप जलाओ,
सूचनाओं से समाज गढ़ो,
ना नफरतों को फैलाओ।

यदि तुम लेखक हो तो,
लेखनी को शस्त्र बनाओ,

झूठ के महलों में अब,
तुम सत्य की दीवार उठाओ।

जो लड़े अकेले,
सच्चाई से कभी ना डगे,
जो झुके नहीं तुष्टिकरण से,
ना ही भय से थमे।

हर उस पल जहाँ तुम बोले,
मैं साथ हूँ न्याय के,
वहीं पुनः जन्मेगा धर्म,
तुम्हारे ही आयाम से।

तो मत पूछो युग कौन सा है?
हर युग एक अवसर है,
कलयुग भी तब तक कलुष है,
जब तक हृदय में डर है।

एक दीप जलाओ सत्य का,
और न जाओ मौन में,
तुम ही वो योद्धा हो,
युग के इस अनंत युद्ध में।

अब और नहीं सहेंगे मौन,
हर आँखों में अंगार चाहिए,

हर नागरिक में अर्जुन जगे,
यही समाज का संहार चाहिए।

झूठ के सिंहासन तोड़ेंगे,
हर पाखंडी का अभिमान,
अब धर्म न मठों में कैद रहेगा,
जागेगा जन की जान।

शिक्षक केवल ना गिनें वेनत,
ज्ञान का दीप जलाएँ,
डॉक्टर सेवा को माने धर्म,
ना शुल्क से मन भर लाएँ।

नेता जनता के उत्तरदायी,
न सत्तालोलुप राक्षस बनें,
युवा केवल नारे ना दें,
भीतर विवेक का व्रत धरें।

माता–पिता भी आँखें खोलें,
संस्कार से घर महकाएँ,
मीडिया ना बिके विज्ञापन पर,
सच की मशाल जलाएँ।

हर धर्मगुरु प्रेम सिखाए,
न बाँटे ऊँच–नीच की रेखा,

हर नागरिक बस इंसान दिखे,
ना हो जात–पाँत का लेखा।

हाँ, यह युग भी एक रणभूमि है,
जहाँ मूल्य और लोभ भिड़ते हैं,
जहाँ हर घर, हर गली में,
सत्य–असत्य के तीर छिड़ते हैं।

और वहाँ, जहाँ अन्याय देख कर,

भी हम चुप रह जाते हैं,

वहीं धर्म हार जाता है,
वहीं अधर्म मुस्काते हैं।

या तो तुम भी दर्शक बनो,
भीड़ में गुम एक नाम,
या फिर उठो योद्धा बनकर,
अपने युग का धर्मधाम।

शस्त्र हो कलम, कवच हो विचार,
रथ हो विवेक की रेखा,

यही एक मात्र उपाय बचे,
बचाने को मानव की लेखा।
यदि कहे कोई युग बदलता है?
तो तुम कहो मैं युग बदलूँगा।

यदि कहे कोई कुछ नहीं होगा?
तो तुम कहो मैं कुछ करूँगा।